|| श्रीहरि: ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 2: सांख्ययोग

4/5 (श्लोक 48-55), रविवार, 04 जून 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/kqCMy2fqzHc

समत्व और स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के लक्षण

दीप प्रज्वलन और गुरु वन्दना के साथ आज के सत्र का शुभारम्भ हुआ। दूसरा अध्याय बड़ा कठिन अध्याय है और गहरा भी है इसमें स्थितप्रज्ञ के लक्षण हैं यही समझना बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

कर्म में अधिकार हैं फल में नहीं यह सारी बातें बहुत उच्च स्तर की हैं और हमारे लिए महत्त्व नहीं रखती, इसलिए इन पर हम ध्यान नहीं देते। सन्तों की परम्परा का यही कारण होता है कि वह जनकल्याण के लिए लोगों का दृष्टि से, क्या उपयोगी है? क्या उनके लिए उपयोगिता रहती है? यही सोचकर हमें समझाते हैं। दूसरे अध्याय को अन्तिम स्तर पर पढ़ने से हम सब उसे समझने के योग्य हो जाते हैं। सैंतालीसवें श्लोक में भगवान एक नए सूत्र का प्रतिपादन करते हैं, ऐसा सूत्र जो पिछले पाँच हजार तीन सौ वर्षों में हमारे भारतीय दर्शन का अमोघ सूत्र हो गया है और हमारे यहाँ छोटे से बालक को भी इस सूत्र का पता होता है, ऐसा अद्भुत सूत्र गीता में प्रकट हुआ है। भगवान कहते हैं :

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥

यह गीता का एकमात्र श्लोक है जिसके चारों चरणों में चार सूक्तियाँ हैं। सूक्ति का अर्थ है कि एक चरण में ही उसका पूरा अध्ययन मिल जाए। **"तस्मात योगी भवार्जुन"** लर्न गीता का बोध वाक्य है यह आधा चरण है, पर इसमें ही बात पूरी हो जाती है।

दूसरे अध्याय के अड़तीसवें श्लोक के दो चरण में दो सूक्तियाँ है ऐसे बहुत सारे श्लोक हैं जिनमें दो सूक्ति हैं। लेकिन यह अकेला ऐसा श्लोक है जिसमें चारों चरणों में चार सूक्तियाँ हैं। इस श्लोक में भगवान कहते हैं "हे अर्जुन! कर्म में तेरा अधिकार है, भगवान ने मनुष्य को अद्भुत शक्ति दी है और कर्म करने की शक्ति भी दी है बाकी सारी योनियों को भगवान ने भोग योनि बनाया है। देवता भी भोग योनि में आते हैं। तिरासी लाख निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे योनियाँ भोग योनियाँ हैं। इन्द्र भगवान हम को आशीर्वाद देंगे, सूर्य भगवान हम को आशीर्वाद देंगे, वह हमारे लिए कुछ अच्छा करेंगे तो उन्हें इसका कोई पुण्य नहीं मिलता। कुत्ता यदि आपको काट लेता है तो उसे कोई पाप नहीं लगता और न ही उसको कोई पुण्य मिलता है। पुण्य और पाप दोनों का विधान केवल मात्र मनुष्य के लिए है। इसलिए कहा गया है :

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।।

देवता भी मनुष्य जीवन के लिए तरसते हैं। मनुष्य बनकर कुछ कर्म करें क्योंकि देवता बनकर भी केवल भोग ही करते हैं, कुछ कर्म नहीं करते। मनुष्य जीवन में आकर क्या करना है :

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा, पाई न जेहि परलोक संवारा।।

यह साधन धाम है। यह मोक्ष का द्वार है। भगवान कहते हैं कि कर्म करने में तेरा अधिकार है क्योंकि तुम मनुष्य हो। मनुष्य मात्र को ही कर्म करने का अधिकार है। इसलिए हे अर्जुन! कर्म करने में ही तेरा अधिकार है। यदि कर्म करने का अधिकार है तो सही करने का और गलत करने का भी अधिकार है। यदि भगवान गलत बनाते ही नहीं तो मनुष्य गलत कर्म करता ही नहीं यदि काम, क्रोध, मोह आदि वासना बनाते ही नहीं तो हमें इन में फँसना ही नहीं पड़ता। यदि भगवान यह माया नहीं बनाते तो इसमें हम नहीं फँसते। गलत बनाया ही क्यों? यदि गलत नहीं बनाते तो सारी गड़बड़ ही नहीं होती। विचार करिए, यदि भगवान ने गलत नहीं बनाया होता या हमें गलत करने का अधिकार न दिया होता तो क्या हमारे पास कोई अधिकार रह जाता? हम अधिकार शून्य हो जाते। यदि हम सब सही-सही ही करेंगे तो मेरा उसमें अधिकार कहाँ है?

यदि हम खिलौने में चाबी भर देंगे तो जितनी हम चाबी भरेंगे, उतनी देर तक वह चलेगा, फिर वह रुक जाएगा। उसमें उस खिलौने की क्या ताकत। न वह अपनी मर्जी से घूम सकता है, न अपनी मर्जी से चल सकता है? उसके पहिए में यदि गति घूमने की गति लगाई है, वह वैसा ही घूमता रहेगा। सीधा चलने की गति लगाई है तो वह सीधा ही चलता रहेगा। यदि भगवान हमें गलत करने का अधिकार न दें तो हम सब भी खिलौने की तरह हो जाएँगे, जिसको बनाने वाले ने जैसा बना दिया, वह वैसा ही करता चला जाएगा।

परन्तु भगवान ने तो मनुष्य को अद्‌भुत ताकत दी है कि जैसा तू चाहे वैसा अपने आपको बना सकता है। वह हाथी को काबू कर सकता है, शेर को काबू कर सकता है, बड़े-बड़े पहाड़ों को लाँघ सकता है। आकाश में भी उड़कर जा सकता है, कितने भी घने जंगलों हों, उन्हें जलाकर भस्म कर सकता है और उससे बाहर भी निकल सकता है। इतनी शक्ति मनुष्य को भगवान ने ही दी है। संसार में ऐसा कुछ भी नहीं जो मनुष्य के काबू में ना आ सके। उठ कर हम ग्रहों के पार भी चले जाएँगे। मङ्गल ग्रह पर भी चले गए। हमारा आकार इतना छोटा है कि हम दिखाई भी नहीं देते। अन्तरिक्ष में जाकर हमारा शहर भी नहीं दिखता तो हम कहाँ से दिखाई देंगे। हमारा घर और हम तो कहीं है ही नहीं। हम अणु मात्र भी दिखाई नहीं देते पर भगवान ने हमें इतनी अद्‌भुत शक्ति दी है कि हम फिर भी अन्तरिक्ष को पार कर सकते हैं।

भगवान ने कहा कि तुम भोग भोगने के लिए नहीं हो, तुम कर्म करने के लिए भी हो, इसलिए तुम तय करो कि तुम्हें क्या करना है। तुम कुछ भी करोगे पर दूसरी सूक्ति कहती है **"मा फलेषु कदाचन"।** कर्म करने पर तुम्हारा अधिकार सौ प्रतिशत है लेकिन फल पर कोई अधिकार नहीं है। मैं जो कर्म करूँगा, उसका फल कितना मिलेगा, मिलेगा भी नहीं, कम मिलेगा या ज्यादा, कहाँ मिलेगा या कब मिलेगा, कैसा मिलेगा, यह कोई नहीं बता सकता। एक ही कर्म जो मैं करूँगा और जो साथ वाला करेगा, उसका एक को फल अभी मिल सकता है और एक को कल भी मिल सकता है। इसको ऋषि मुनि भी नहीं जान पाते तो साधारण मनुष्य को कैसे जान पाएगा।

हमें फल का अधिकार कुछ भी नहीं है। इसका पहला कारण है-हमारे कर्म में प्रारब्ध जुड़े हैं। एक दृष्टांत है - एक सेठ की फैक्ट्री थी। उसका दोस्त उस फैक्ट्री को देखने आया। उसकी फैक्ट्री में मजदूर सारा दिन कार्य करते थे और शाम को सेठ सबको मजदूरी देता था। सारा दिन तो मित्र बैठा रहा शाम को जब मजदूरी देने का समय आया तब वह देखने लगा कि सेठ ने एक को पाँच सौ रुपए दिए हैं, एक को एक हजार रुपए दिए हैं और एक को दो हजार रुपए दिए हैं। तकनीकी काम था और सेठ ने मित्र को बताया था कि हम दैनिक मजदूरी हजार रुपए देते हैं। मित्र ने देखा कि सब ने बराबर काम किया है लेकिन एक को पाँच सौ दिए, एक को एक हजार दिए और एक को दो हजार रुपए दिए। यह तो सही नहीं है। सेठ ने कहा "नहीं इसमें कुछ भी गलत नहीं है। तुम तो आज ही आये हो, तुम्हें सारी बात नहीं पता। सेठ ने बताया जिसको मैंने पाँच सौ दिए, उसने कल मुझसे पाँच सौ एडवांस ले लिए थे, इसलिए मैंने उसके पाँच सौ काट दिए। दूसरे ने एक हजार का काम किया इसलिए मैंने

उसको एक हजार दे दिए और तीसरे ने कल के पैसे नहीं लिए थे, इसलिए इसे कल और आज की मजदूरी के दो हजार रुपए दिए। कहने का तात्पर्य यह है कि जिसको पूर्व की पता नहीं होता, उसे तो अन्याय ही दिखेगा।

हम सब यही सोचते हैं कि मैं तो इतना अच्छा हूँ, मैं तो किसी का बुरा नहीं करता, मेरा पड़ोसी तो सबका बुरा करता है, कितना बदमाश है पर गाड़ी उसके घर के आगे खड़ी है, मेरे घर के आगे नहीं। भगवान उसके साथ ही अच्छा करते हैं, मेरे साथ नहीं करते। हम तो भगवान से ऐसी ही शिकायत करते हैं क्योंकि हम पुराने खाते नहीं जानते। जिसका पुराना जमा है, वह भोग रहा है। हमारे ऊपर पुराना ऋण है, वह निपट रहा है। किसका पुराना डेबिट है और किसका पुराना क्रेडिट है, जब तक यह पता नहीं होता, कर्म फल नहीं मिल सकता।

दूसरा फल में अधिकार नहीं है। दूसरा कारण है कि कर्म फल क्रिया के भाव के कारण भी फल का अधिकार मिलता है। वर्तमान के संविधान के बारे में बात करें तो मान लीजिए कि एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति की हत्या कर दी। अदालत में केस हुआ। केस में सजा हुई। एक व्यक्ति वो था जिसने पैसे लेकर कत्ल किया और दूसरा वह व्यक्ति था जिसने कत्ल करवाने के लिए उस व्यक्ति को पैसे दिए। जिसने हत्या की, उसको संविधान के अनुसार उम्रकैद होगी और जिसने कत्ल करवाया उसको फाँसी भी हो सकती है। जिसने प्रत्यक्ष रूप से मारा उसको तो उम्रकैद होगी और जिसने मारने की योजना बनाई, वह मुख्य दोषी माना जाएगा। जिसने प्रत्यक्ष रूप से क्रिया की, उसको सजा कम और जो उस क्रिया का मुख्य उत्तरदायी है, जिसने मारने की योजना बनाई, उसकी सजा ज्यादा होगी। यह भारत के वर्तमान कानून में है और भगवान के कानून में भी हैं। हम क्या क्रिया करते हैं, उसके पीछे हमारी क्या भावना है, उसके अनुसार ही फल मिलता है। इसलिए हत्या का षड्यंत्र करने वाले को धारा 302 और धारा 120 में फाँसी मिलेगी और जिसने हत्या की है उसको धारा 302 के अन्तर्गत उम्रकैद मिलेगी।

एक बड़ी सुन्दर कथा है। एक राजा के राज्य में बड़ी सुन्दर पहाड़ी थी। उसने सोचा कि इस पहाड़ी पर देवी का बड़ा सुन्दर मन्दिर बनाया जाए। राज्य के सब मजदूर एकत्रित किए गए। राजा ने मन्त्री से कहा जो मन्दिर का गर्भ गृह बनाएगा, उसको बनाने वाले मजदूर अच्छी भावना के होने चाहिए, ऐसे मजदूर ढूँढ कर लाओ। मन्त्री ने कहा कि ऐसे मजदूर कहाँ से मिलेंगे और हमें कैसे पता चलेगा उनकी भावना कैसी है। राजा ने कहा कि मैं तुम्हें तरकीब बतलाऊँगा कि कैसे पता लगाया जाएगा। राजा और मन्त्री भेष बदलकर मजदूरों के कैंप में पहुँच गए। उनको जो काम दिया गया था, वह सब काम कर रहे थे। पहले मजदूर के पास गए उससे पूछा कि क्या कर रहे हो? वह बोला कि दिख नहीं रहा,क्या कर रहा हूँ? किस्मत फूटी थी, रोड़ा तोड़ रहा हूँ। राजा ने मन्त्री से कहा "जितने उत्तर इस तरह के आएंगे,उनको एक कैटेगरी में रख लेना।" दूसरे मजदूर से पूछा तो उसने कहा कि जो काम मिल जाए, वह कर लेते हैं। पहले तेली के काम करता था, तेली के यहाँ रोज काम नहीं मिलता था लेकिन यहाँ कम से कम वर्ष भर तो काम चलेगा तो इतने समय तक खाने की समस्या नहीं रहेगी और खूब मौज रहेगी। राजा ने कहा ऐसे मजदूर को दूसरी कैटेगरी में रख लो। बात करते-करते तीसरे मजदूर के पास पहुँचे। उससे भी यही प्रश्न किया। उसने कहा कि भगवान की बड़ी कृपा है। पहले तो मैं इधर-उधर काम करता था। किसी का मकान बनाता था। अब तो भगवान ने ऐसी कृपा हुई है कि भगवान का मकान बनाने का कार्य मिल गया है। अब जाकर मेरे भाग्य का उदय हुआ है कि भगवान का घर बनाने का सौभाग्य मिला है, बड़ा आनन्द हो रहा है। मैंने तो तय कर लिया है कि मन्दिर का कार्य पूरा होने के बाद भी मैं कहीं नहीं जाऊँगा। यहीं पर कुछ भी काम करूँगा, चाहे चाय बेचूँगा, प्रसाद बेचूँगा, कुछ भी कार्य करूँगा पर भगवान का धाम छोड़ कर नहीं जाऊँगा। राजा ने मन्त्री से कहा कि जो पहले श्रेणी वाले मजदूर हैं उनको दस रुपए रोज की मजदूरी देना और सड़क बनाने के काम पर लगा देना। दूसरी श्रेणी वाले मजदूर को बीस रुपए रोज की मजदूरी देकर जो विश्रामालय बनेंगे और अन्य भवन बनेंगे उनमें उन मजदूरों को लगा देना। तीसरी श्रेणी वाले मजदूरों को चालीस रुपए रोज की मजदूरी देना और भगवान का गर्भ गृह बनाने में लगा देना। यह भावना सर्वोत्तम भावना है। काम तीनों श्रेणियों के मजदूर कर रहे हैं। क्रिया में कोई अन्तर नहीं है। केवल भावना में अन्तर है। जब हम घर बनाते हैं तो मजदूर को तो पाँच सौ रुपए रोज की मजदूरी देते हैं और जो मजदूरों को सम्भालता है, वह मजदूरों के ऊपर ठेकेदार होता है उसको हम ज्यादा मजदूरी देते हैं। मजदूर तो काम करते हैं लेकिन वह ठेकेदार काम कुछ नहीं करता, केवल कुर्सी पर आराम से बैठकर मजदूरों से काम करवाता है कि खाली क्यों बैठे हो, पत्थर तोड़ो, मशाला लगाओ, ऐसा काम करो, वैसा काम करो, ऐसे आदेश देता रहता है। शाम को जब हिसाब होता है तो मजदूरों को तो पाँच सौ रुपए मिलते हैं लेकिन ठेकेदार को हजार रुपए मिलते हैं। हम क्रिया के अनुसार मूल्य नहीं देते, भावना के अनुसार और कौन कितने उत्तरदायित्व निभा रहा है, उसके अनुसार मूल्य देते हैं। सारा परिणाम क्रिया का भावना के अनुसार हो रहा है।

पहली बात हमारा कर्मफल हमारे प्रारब्ध से जुड़ा है और दूसरी बात हमारी क्रिया करने में क्या भावनाएँ रही, उसके अनुसार कर्मफल बदल जाता है। दोनों ने एक ही का कर्म किया पर दोनों के कर्मफल में अन्तर है क्योंकि दोनों की क्रिया करने की भावना अलग है।

तीसरे चरण में भगवान कहते हैं "हे अर्जुन! हम अपने कर्म के लिए अपने को उत्तरदायी मानते हैं। मैंने यह किया, मैं यह कर रहा हूँ, मैंने इतनी बड़ी कोठी बनाई, मैंने इतना बड़ा बिजनेस साम्राज्य खड़ा किया, मैंने बच्चों को इतना बड़ा करके समझदार बना दिया हम सब अपने को ही कर्ता मानते हैं। जहाँ हमने अपने को कर्ता बनाया वहाँ भोक्ता भी हमको ही बनना पड़ता है। जहाँ-जहाँ अपने को कर्ता मानकर पीठ ठोकी है वहाँ- वहाँ आँसू बहाने पड़ते हैं, दुःख भोगना पड़ता है।"

भगवान कहते हैं यदि आँसू बहाने से बचना चाहते हो तो हर कर्म के लिए खुद को कर्ता मत मानो, कर्म के फल का कारण मत बनो। मत सोच कि मैं पिता की भूमिका में, माता की भूमिका में, भाई की भूमिका में, बहन की भूमिका में, गीता सुनने की भूमिका में, गीता सुनाने की भूमिका में हूँ। अपने आपको कर्ता मत मान, बस ऐसा सोच कि भगवान करवा रहे हैं और मैं कर रहा हूँ। मैं कुछ भी नहीं करता, जो करता है वह शरीर करता है, कर्म के परिणाम का उत्तरदायी जब हम खुद को मानते हैं तो उसके फल में फँस जाते हैं।

अयोध्या काण्ड में इक्यावनवे दोहे में निषादराज लक्ष्मण से कहते हैं-:

कैकयनन्दिनि मंदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहिं रघुनन्दन जानकिहि सुख अवसर दुःखु दीन्ह॥

केकैयी ने बड़ा गन्दा काम किया,राज्याभिषेक होने वाला था और वनवास दे दिया।

लक्ष्मण जी कहते हैं "ऐसी बात नहीं है"

काहू न कोऊ सुख-दुख कर दाता,
निज कृत कर्म योग सुनु भ्राता।

हे निषाद राज! कोई किसी को सुख दुःख देने वाला नहीं है। सबको अपने कर्मों का ही फल भोगना पड़ता है। यह हमारे इस जन्म के कर्म हैं या पूर्व जन्म के कर्म हैं या अनेक पूर्व जन्मों के हैं, हमें अपने उन कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। कोई किसी के सुख-दु:ख का कारक नहीं होता।

पर हम तो हमेशा ऐसे ही कहते हैं कि जब से बहू घर आई है तब से घर बिगड़ गया है। पहले तो बहुत अच्छा था। मैं अपने लड़कों को पढ़ा नहीं पाया या मैंने लड़कों को ज्यादा पढ़ा दिया, इसलिए मुझे छोड़ कर विदेश चला गया। हम जब कर्म के फल के हेतु खुद को मान लेते हैं, तब हम दुःख भोगते हैं। बढ़ते-बढ़ते हम सोचने लगते हैं कि पड़ोसी ऐसा ना होता, तो क्या होता। मोदी ना होता तो क्या होता? सरकार को ऐसा करना ही चाहिए। हम सब कर्म के हेतु बनकर अपने जीवन को दुःखी करते हैं। भगवान कहते हैं कि यदि इस दुःख से छुटकारा पाना है तो अपने को कर्ता मानना छोड़ दो। अपने को फल के हेतु मानना छोड़ दो, अपने कर्म के भावों को छोड़ोगे तो इससे दुःख से दूर हो जाओगे।

चौथे चरण में भगवान कहते हैं "हे अर्जुन! तेरी कर्म न करने में आसक्ति न हो। भगवान ने यह नहीं कहा कि कर्म करने में तेरी अनासक्ति हो। भगवान ने अलग तरीके से बात कही कि तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो अर्थात् कि तू कर्म किए बिना तो एक पल भी नहीं जी सकता हमें लगता है कि हम कुछ नहीं कर रहे पर साँस तो ले रहे हैं, हम बैठे हैं, यह भी कर्म है, हम सो रहे हैं, यह भी कर्म है, हम सो कर उठे, यह भी एक कर्म है। क्या हम सोते रह सकते हैं, थोड़ी देर सो कर क्या लगता है कि सो लिए, अब उठना पड़ेगा। बैठना, सोना, बोलना और ना बोलना भी कर्म है। एक क्षण भी बिना कर्म के नहीं रह सकते। जो भी किया कि वह कर्म है। चाहे हाथ हिला रहे हों या पैर। भगवान अर्जुन से कह रहे हैं कि कर्म तो तुझे करना ही पड़ेगा लेकिन इसको कर्तव्य भावना से किया तो तू इसका कर्ता नहीं रहेगा और "मैंने किया " इस भावना से कर्म करेगा तो इसमें फँस जाएगा। कर्म कैसे

करना है, यहाँ भगवान एक अद्भुत सूत्र देकर अपनी बात को आगे बढ़ाते हैं। पाँच सौ चौहत्तर श्लोक गीता में भगवान ने कहे हैं। पाँच सौ चौहत्तर श्लोक में जब विचारकों ने विचार किया कि भगवान ने गीता में इतनी सारी बातें कहीं, उसमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात क्या है? सन्तो के इसमें बड़े विचार हैं लेकिन यदि एक ही अभीष्ट निकालना हो तो सन्तो ने कहा कि छठे अध्याय के छियालीसवें श्लोक का अन्तिम चरण है-:

तस्मात योगी भवार्जुन।

यह गीता का ध्येय वाक्य है।।

भगवान ने कहा कि तू योगी हो जा। अब योगी कैसे बनोगे? ये सारी बातें भगवान तस्मात् योगी भवार्जुन कह कर ध्यान योगी कैसा होता है, कर्म योगी कैसा होता है, ज्ञान योगी कैसा होता है, भक्तियोगी कैसा होता है, विस्तार से बताते हैं। जैसे कि एक पिता अपने पुत्र से कहता है कि तुम कोई व्यवसाय कर लो फिर व्यवसाय किस चीज का करना है, कैसे करना है, कितनी पूँजी लगानी है, बहुत से विकल्प हो सकते हैं।

अर्जुन और भगवान की बातें गीता में अध्याय के अनुसार नहीं थी वे सीधी बात कर रहे थे। यह वेदव्यास जी ने जब महाभारत लिखी तो लिखते समय इसको अध्याय में बाँट दिया जिससे हम जैसे कम बुद्धि वालों को समझने में आसानी हो जाए। यहाँ तक एक विषय है और यहाँ से यहाँ तक दूसरा विषय है और उनको विषयबद्ध कर दिया। उन सब अध्यायों के जो नाम दिए, उनके साथ योग जोड़ दिया। गीता को योग शास्त्र नाम दे दिया। यह योगशास्त्र है। यह समस्त योगों का शास्त्र है। योगेश्वर कृष्ण, कृष्ण योगेश्वर हैं और यह गीता योगशास्त्र है और सारे अध्याय को भी योग कह दिया। भगवान को योगेश्वर कहा। हमारे छह दर्शन में योग भी एक दर्शन है। योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि हैं। उन्होंने अष्टांग योग में आठ नियम बताए थे -

यम - नियम - आसन - प्राणायाम - प्रत्याहार - धारणा - ध्यान - समाधि।

अन्तिम श्रेणी समाधि समाधि क्या है? "सम" + "अधि" - धि यानि बुद्धि, समा मतलब समत्व

जहाँ पर बुद्धि का समत्व आ गया है, जहाँ बुद्धि ठहर गई और जहाँ बुद्धि की चञ्चलता समाप्त हो गई है और इसी सूत्र से योग को परिभाषित करते हुए भगवान ने कहा कि **"समत्व योग उच्चते।"** सभी योगों में समत्व सर्वश्रेष्ठ योग है।

भगवान ने "नहीं "करने का भाव महत्त्वपूर्ण बतलाया भगवान कहते हैं कि तुम योग में स्थित होकर कर्म करो। कर्म में सफलता, असफलता दोनों में तुम्हारी बुद्धि समान हो जाए। कर्म में कर्त्तव्य, मैं करूँगा। इसमें सफलता मिलेगी तो ठीक असफलता मिलेगी तो ठीक। मेरे मन के अनुकूल परिणाम आएँगे तो ठीक और मन के प्रतिकूल परिणाम आएँगे तो ठीक। आसक्ति का त्याग करने से मनुष्य आगे बढ़ता है तो समत्व का योग स्थापित होता है। समत्व की फल शुद्धि का ज्ञानी, कर्म योगी और भक्तों तीनों को चाहिए, चाहे ज्ञान योग हो, कर्म योग हो, भक्तियोग इन तीनों का अन्तिम विषय समत्व ही है।

स्वामी रामदेव कहते हैं कि योग जो मोटा है उसका मोटापा घटाएगा पर जो दुबला है उसको और दुबला थोड़े करेगा। योग समत्व भाव से कार्य करता है। मोटे लोगों का मोटापा कम करता है और पतले लोगों का योग वजन बढ़ाकर उन्हें स्वस्थ बनाता है। योग समत्व लाने के लिए है। बिना कर्म के फल के कर्म करने में क्या आनन्द आएगा? भगवान ने कहा, ऐसी बात नहीं है। सकामता रखकर कर्म फल की सिद्धि में जो आनन्द आता है, वह होता तो बहुत है पर सकामता से कर्म फल सिद्धि की बात निम्न स्तर की है अब उच्च स्तर की बात बताता हूँ।

2.48, 2.49

योगस्थः(ख्) कुरु कर्माणि, सङ्गं(न्) त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्ध्योः(स्) समो भूत्वा, समत्वं(यँ) योग उच्यते॥2.48॥

दूरेण ह्यवरं(ङ्) कर्म, बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ, कृपणाः(फ्) फलहेतवः॥2.49॥

हे धनञ्जय ! (तू) आसक्ति का त्याग करके सिद्धि-असिद्धि में सम होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर; (क्योंकि) समत्व (ही) योग कहा जाता है।
बुद्धियोग (समता) की अपेक्षा सकाम कर्म दूर से (अत्यन्त) ही निकृष्ट है। (अतः) हे धनञ्जय ! (तू) बुद्धि (समता) का आश्रय ले; क्योंकि फल के हेतु बनने वाले अत्यन्त दीन हैं।

विवेचन:-हम एक दिन में बहुत सारे कार्य करते हैं। मान लीजिए दस कार्य के परिणाम हमारे मन के अनुकूल हो और दस के परिणाम प्रतिकूल हो, तो आखिर में हम उस दिन को कैसा मानेंगे अच्छा, बुरा या समान। पर मनुष्य तो बुरा ही मानता है। वह सोचता है कि जो दस कार्य प्रतिकूल हुए हैं, उससे तो दिन कैसे बीता उसकी तो पूछो मत, जीवन का सबसे खराब दिन था। उस दिन दस सिद्धि भी हुई हैं, वह तो गिनती में ही नहीं। लेकिन दस कार्य जो उल्टे हो गये उससे हम बड़े विचलित हो जाते हैं। यदि उन्नीस सिद्धि हो जाए और एक असिद्धि हो जाए तो मनुष्य ऑफिस से आते ही एक असिद्धि का दुःख मनाएगा।

व्यापारी दुकान पर माल बेचता है। पच्चीस ग्राहक आए और चौबीस ग्राहक से मुनाफा हुआ और एक ग्राहक को गलत दाम में बेचा तो चौबीस को याद नहीं रखेगा पर एक ग्राहक से घाटा हो गया, उसको ही ध्यान में रखेगा। चौबीस ग्राहकों से जो चौबीस रुपए कमाए और एक ग्राहक से एक रुपए का नुकसान हो गया तो चौबीस में से एक घटाकर तेईस फिर भी बचें पर हम उसे एक रुपए को ही याद रखेंगे।

राजस्थान में शादी पहले बड़े जोरों से होती थी। यदि पूरी शादी में सौ व्यञ्जन बने और बस एक व्यञ्जन ही खत्म हो जाए तो चर्चा उस खत्म हुई व्यञ्जन की होती थी। हम सफलता को थोड़े समय याद रखते हैं और असफलता को दीर्घकालीन याद रखते हैं। कोई विद्यार्थी हर वर्ष पास होता है और एक वर्ष फेल हो गया और हर बार पास होने को याद नहीं रखेंगे पर एक बार के फेल होने को जीवन भर याद रखा जाता है। सिद्धि होने से अपेक्षा कम होती है और असिद्धि होने से दुःख ज्यादा होता है। एक व्यापारी था। उनके घर दूसरा व्यक्ति भोजन के लिए आया तो उस व्यापारी ने पूछा कि बड़े उदास लग रहे हो। क्या हुआ तो उसने कहा कि एक दिन में पाँच लाख का घाटा हो गया। यह विचार गम्भीर हो गया। उसकी पत्नी जब खाना परोस परोस रही थी, तब बड़ी खुश थी तो उसने पूछा पाँच लाख का घाटा हो गया तो आप बड़े खुश हो आपको दुःख नहीं हो रहा। उसकी पत्नी ने कहा कि इन्होंने किसी कम्पनी के शेयर खरीद रखे थे, कल उस शेयर की वैल्यू दस लाख थी और आज सुबह पाँच लाख थी जब इन्होंने बेचे तो पाँच लाख में बेचे। पाँच लाख का मुनाफा को ना मानकर जो पाँच लाख कम में बेचे, उसको घाटा मान रहे हैं, दस लाख से पाँच लाख का मुनाफा हुआ है, पहले वह शेयर दस लाख का बेच सकते थे। तो यह पाँच लाख का मुनाफा है या पाँच लाख का घाटा।

आजकल बच्चों के स्कूल की परीक्षा के परिणाम आ रहे हैं। कई बार अट्ठानब्बे प्रतिशत प्रतिशत वाला रो रहा है कि मुझे अच्छी जगह दाखिला नहीं मिलेगा। पहले छप्पन प्रतिशत आने पर भी खुश होते थे। जिसको पास होने की उम्मीद नहीं थी और वह छप्पन प्रतिशत ले आए तो वह मिठाई बाँट रहा है, जिसको सौ प्रतिशत आने थे, उसके अट्ठानब्बे प्रतिशत आ जाए तो वह रो रहा है कि मेरे सौ प्रतिशत आने थे, दो प्रतिशत कम आए। ये लोग दया के पात्र हैं उनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। अपनी बात नहीं करें पर हम सब भी ऐसी ही कैटेगरी के हैं। पर यदि पाँच लाख वाला हमारे सामने आ जाए तो वह दया का पात्र है, इसकी बुद्धि मारी गयी है, पाँच लाख के मुनाफे बाद भी रो रहा है। भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन तुम दीन मत बनो। तुम आगे बढ़ो। तुम विषय के सङ्ग को छोड़ो।

जिन विषयों में हमारी आसक्ति नहीं होती वह हमें दुःख नहीं देती। आजकल मोबाइल हर किसी के पास होता है। कई व्यक्ति अपना मोबाइल बड़े साफ रखते हैं और बच्चे आकर मोबाइल गिरा दें तो मोबाइल से ज्यादा उनका दिल टूटता है। वह कहता है कि चार वर्ष से सम्भाल कर रखा है और इसने इसकी स्क्रीन तोड़ दी। जहाँ जितनी स्पृहा होती है, वहाँ उतना ही दुःख होगा। यूक्रेन में कितने लोग मारे गए, हमें इतना दुःख नहीं हुआ क्योंकि हमें उनमें कोई आसक्ति नहीं थी। जहाँ जितनी आसक्ति होगी,

वहाँ उतना ही दुःख होगा। जहाँ कोई आसक्ति या स्पृहा नहीं, वहाँ कोई दुख नहीं होता।

सङ्ग, आसक्ति, स्पृहा, कामना, वासना और तृष्णा ये क्रम हैं।

सबसे पहले सङ्ग होती है, फिर आसक्ति होती है, फिर स्पृहा होती है, फिर कामना होती है, फिर वासना होती है और फिर वासना तृष्णा में बदल जाती है और इसके कारण **पुनरपि जनमं, पुनरपि मरणं** का यह चक्र चलता रहता है। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति के साथ ऐसा ही है। स्पृहा का अर्थ है चिपकाव या चिपकना भगवान कहते हैं सिद्धि हो तो ठीक ना हो तो ठीक। मिले या ना मिले। जैसे कहा गया है-

सीता राम सीता राम सीताराम कहिये,
जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये।।

होइहि सोइ जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावै साखा।।

भगवान कहते हैं,योग में स्थित हो जाओ। सुख-दुःख,जय-पराजय, लाभ-हानि, अनुकूलता - प्रतिकूलता इन सब में समान हो जाओ, यही समत्व है। जितने भी द्वन्द्व हैं, उनमें समान हो जाएँ, यही समत्व है। जो सुख होने पर खुश ना हो तो उसे दुःख होने पर रोना नहीं पड़ेगा। बच्चे के जन्म की जितनी खुशी मनाई थी, उस बच्चे से गाली सुनने पर उतना ही दुःख होगा। जिसने कम खुशी मनाई थी उसे दुःख भी कम होगा। जिसने जितने लड्डू बाँटे थे जितनी थाली बजाई थी, उसे उतना ही बड़ा दुःख होगा। दुख क्या है - अप्रिय का मिलन, प्रिय का वियोग। जो नहीं चाहिए था, वह आ गया तो दुःख। जो चाहिए था वह चला गया तो दु:ख। प्रिय और अप्रिय इनकी समता आ जाना ये समत्व है। मुझे ना कुछ प्रिय है ना अप्रिय, मुझे ना उसको वियोग परेशान करेगा और न उसको संयोग करेगा।

कबीरा ने अपने एक दोहे में कहा हैं-:

कबीरा खड़ा बाज़ार में, माँगे सबकी खैर!
ना काहू से दोस्ती, न काहू से बैर! !

अर्जुन ने अभिमन्यु के मरने पर जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की, उसने जयद्रथ के प्रति द्वेष भावना रखी। उस दिन पूरे महाभारत के अट्ठारह दिनों के युद्ध में अर्जुन का सबसे खराब प्रदर्शन था। अभिमन्यु के वध के बाद अगले दिन अर्जुन ने इतना खराब युद्ध किया कि भगवान ने कृष्ण ने उनको ताने दिए। क्या अपने आप को धनुर्धारी कहते हो? तुमसे अच्छा तो यह सैनिक बाण चला लेगा क्योंकि युद्ध में तुम्हारी रुचि नहीं है। क्या तुम सूर्य को देख रहे हो? कभी जयद्रथ को देख रहे हो। द्वेष भाव के कारण मनुष्य अपना कौशल खो बैठता है।

2.50

बुद्धियुक्तो जहातीह, उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व, योगः(ख्) कर्मसु कौशलम्॥2.50॥

बुद्धि-(समता) से युक्त (मनुष्य) यहाँ (जीवित अवस्था में ही) पुण्य और पाप दोनों का त्याग कर देता है। अतः (तू) योग (समता) में लग जा (क्योंकि) कर्मों में योग (ही) कुशलता है।

विवेचन-: प्रायः कर्मों में कुशलता योग है। इसका अर्थ योग की कक्षा चलाने वाले प्रायः सभी कहते हुए मिलेंगे। पर इसका यह अर्थ नहीं है। जो कर्मों में कुशल है, वह योगी हो जाए ऐसी सम्भावना तो नहीं है कर्मों में कुशलता योगी है यह पूरी बात ठीक नहीं है।

दो तरह के फल हैं, एक इहलोक और दूसरा परलोक। जो इस लोक में मिलता है या इस लोक के बाद मिलता है। दोनों समान हैं। कर्मों की कुशलता का अर्थ भगवत् प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर है। चोरी करने वाला अपने कर्मों को कुशलता से करता है, वह क्या योगी बनेगा? कर्म फल से अन्तर नहीं पड़ता। अनुकूलता और प्रतिकूलता से अन्तर नहीं पड़ता। प्रारब्ध से ही सब कुछ हो रहा है, बुद्धि जब यहाँ ठहर जाती है कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, यह सब पीछे से हो रहा है, कर्त्तापन के भाव से मुक्त हो गया, फल इच्छा व भोग इच्छा से मुक्त हो गया। नया एकाउंट बना नहीं पुराना ही चल रहा है, मेरा एकाउंट क्लियर हो गया। यह बातें जितनी जल्दी समझ जाएँगे, उतनी जल्दी हम कर्त्तापन के भाव से मुक्त हो जाएँगे, हमारा कर्म एकदम उत्तम कोटि का हो जाएगा। मेरा कर्म भी भगवान देखते हैं जो इस सोच से कर्म करेगा, वह उत्तम कर्म करेगा। पूज्य गुरुदेव जी जो भी पूरे दिन में जो कार्य करते हैं, वह सबके लिए कल्याणकारी होता है। सबको उत्तम बनाने के लिए होता है। यह अद्भुत बात चलती रहती है।

ठाकुर रामकृष्ण परमहंस जी जो महायोगी विरक्त तथा सिद्ध पुरुष थे। एक बार एक सेठ कश्मीर की पशमीना शाल स्वामी जी के लिए लेकर आया। उसने उस शाल के गुणों का व्याख्यान किया। तभी ठाकुर जी के एक प्रकाण्ड विद्वान शिष्य राखाल वहाँ आए, उन्होंने राखाल को हाट से दो आने का मिट्टी का लोटा लाने को कहा। जब राखाल लोटा लेकर आया तो ठाकुर जी ने उस में जल भरा। जल भरते लोटा चूने लगा। ठाकुर जी ने फूटा लोटा लाने पर उन्होंने राखाल को बहुत डाँटा और दूसरा लाने का आदेश दिया और उस लोटे से जमीन पर गिरे हुए पानी को उस शाल से पोंछने लगे। यह देखकर सेठ जी के तन बदन में आग लग गई पर ठाकुर जी को सेठ के अन्दर के अहङ्कार तोड़ना था। स्वामी विवेकानन्द ने जब उनसे पूछा कि आपने इतनी मूल्यवान शाल से जमीन पर गिरा पानी क्यों पोंछा। ठाकुर जी ने कहा, जिस चीज की जब जहाँ जैसे आवश्यकता हो, उसके अनुसार उसका इस्तेमाल कर लेना चाहिए। शाल से जमीन पर गिरा पानी पोंछा तो पानी पोंछने के लिए उपयोग किया, जब ओढ़ने की आवश्यकता होगी, तब ओढ़ लेंगे। स्वामी विवेकानन्द जी ने आश्चर्य से फिर प्रश्न किया, फिर आपने दो आने के लोटे के लिए राखाल को इतना क्यों फटकारा। इस पर ठाकुर जी ने कहा जब मैं तुमको शिष्य रूप में तैयार करता हूँ तो यह सोचकर तैयार करता हूँ कि तुम दुनिया में बहुत बड़े बुद्धिमान बनोगे, प्रचारक बनोगे तो तुम्हारे कर्मों में दोष नहीं होना चाहिए। हमारा हर कर्म कुशल होना चाहिए। उसमें दोष नहीं होना चाहिए। मैं तुम्हें मठ में रहकर इतना पढ़ाता हूँ। वेदान्त पढ़ाता हूँ, ज्ञान सिखाता हूँ, तुम्हें गधा बनाने के लिए नहीं पढ़ाता, मैं तुम्हें दुनिया का सबसे ज्यादा ज्ञानी बनाने के लिए पढ़ाता हूँ तो यदि तुम दो आने का लोटा खरीदना भी नहीं सीखोगे तो दुनिया का तो क्या ज्ञान दोगे, वेदान्त क्या पढ़ाओगे। दो सौ रुपए की शॉल में समत्व की बुद्धि है और दो आने में कुशलता की बुद्धि है। हम यह समानता नहीं कर पाते। हमारे लिए दो आने का कोई मोल नहीं पर सन्तों का एकदम उल्टा है। वे तो कुशलता को महत्त्व देते हैं, मूल्य को महत्त्व नहीं देते। जो बच्चे बचपन से गीता को याद करके गए हैं, हर जगह सफल हुए हैं, उसकी स्मरणशक्ति एकदम बढ़ गई, उनका स्तर एकदम से बढ़ गया।

2.51

कर्मजं(म्) बुद्धियुक्ता हि, फलं(न्) त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः(फ्), पदं(ङ्) गच्छन्त्यनामयम्॥2.51॥

कारण कि समतायुक्त बुद्धिमान साधक कर्मजन्य फल का त्याग करके जन्मरूप बन्धन से मुक्त होकर निर्विकार पद को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचन-: भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि समत्व बुद्धि से युक्त ज्ञानी जन कर्म से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर जन्मरूपी बन्धन से मुक्त होकर निर्विकार परम पद को प्राप्त होता है। जब तक सकामता रहेगी तब तक सिद्धि तथा असिद्धि के भाव रहेंगे। तब तक **पुनरपि जन्मम् पुनरपि मरणम्** चलता ही रहेगा। No body can stop it. अगर तुम इस जन्म मरण के चक्र से छूटना चाहते हो तो तुम्हें कर्मबन्धन को छोड़ना होगा। तुम्हारे पास दूसरा समाधान नहीं है।

2.52

यदा ते मोहकलिलं(म्), बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं(म्), श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥2.52॥

जिस समय तेरी बुद्धि मोहरूपी दलदल को भली भांति तर जायगी, उसी समय (तू) सुने हुए और सुनने में आने वाले (भोगों से)

वैराग्य को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन-: हे अर्जुन! जब तुम्हारी बुद्धि मोह रूपी जंगल को पार कर जाएगी, उस समय तुम्हें सुने हुए और सुनने में आने वाले इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी भोगों से वैराग्य प्राप्त हो जाएगा।

2.53

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते, यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिः(स्), तदा योगमवाप्स्यसि॥2.53॥

जिस काल में शास्त्रीय मतभेदों से विचलित हुई तेरी बुद्धि निश्चल हो जायगी (और) परमात्मा में अचल (हो जायगी), उस काल में (तू) योग को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन-: जब कोई बहुत ज्यादा सुनता व पढ़ता है उसकी बुद्धि ज्यादा विचलित हो जाती है। कान बहुत पावरफुल होते हैं। हमको आँखें पावरफुल लगती हैं लेकिन सारी इंद्रियों में सबसे ज्यादा पावरफुल कान होते हैं। मरने के बाद भी यदि कोई इंद्रिय देर तक जीवित रहती है तो वह कर्ण इंद्रिय है। अभी तीन वर्ष के बालक ने सुन-सुन के गीता के छः अध्याय कण्ठस्थ कर लिए।

सारे भोगों की रूचि सुनने से ही आती है। फलाना देश बहुत सुन्दर है मैंने सुना है। मेरा मन है, मैं वहाँ जाऊँ, फलाना पदार्थ बहुत स्वादिष्ट है, मैंने सुना है, मेरी रुचि है, मैं भी खाऊँ। सुनने से मेरे भोग के प्रति रुचि का निर्माण हो जाता है। जो बैंकाक जाता है पर गया नहीं और लाखों रुपए की टिकट पहले ही बुक करा देता है क्योंकि उसने किसी से सुना है कि वह बहुत अच्छा देश है। मैं वहाँ जाऊँगा तो बहुत मजा आएगा।

इसका सबसे ज्यादा बड़ा उदाहरण है आतंकवादी। इन आतंकवादियों को यह सुनाया जाता है कि तुम को स्वर्ग में हूर मिलेंगी। बस सुनने मात्र से ही वे बम बाँधकर मरने को तैयार हो जाते हैं। सुनने से उनके दिमाग में भर जाता है कि अल्लाह के पास जाकर तुम्हारा हूर स्वागत करेंगी ।

भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! तूने बहुत सुना है कि युद्ध करने से वर्णसंकर हो जाएँगे, कुल धर्म समाप्त हो जाएँगे। यदि तू परमात्मा के साथ बुद्धि का एकाकार कर लेगा, तब तेरी बुद्धि अचल हो जाएगी और ठहर जाएगी।

2.54

अर्जुन उवाच
स्थितप्रज्ञस्य का भाषा, समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः(ख्) किं(म्) प्रभाषेत, किमासीत व्रजेत किम्॥2.54॥

अर्जुन बोले - हे केशव ! परमात्मा में स्थित स्थिर बुद्धि वाले मनुष्य के क्या लक्षण होते हैं? वह स्थिर बुद्धि वाला मनुष्य कैसे बोलता है, कैसे बैठता है (और) कैसे चलता है अर्थात व्यवहार करता है?

विवेचन-: हमारे मन में यह प्रश्न कभी नहीं आता यह सिर्फ अर्जुन के मन में ही आ सकता है। अर्जुन पूछते हैं कि यह स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता है, इसके क्या लक्षण हैं, कैसे बैठता है और कैसे चलता है क्योंकि मैंने तो ऐसे कभी देखा ही नहीं, यह कैसे हो सकता है। ऐसा कौन हो सकता है।

एक भजन है :

ऐसे मुनि वर देखें वन में ,
जाके राग - द्वेष नहिं मन में।।

ग्रीष्म ऋतु शिखर के ऊपर,
मगन रहे ध्यानन में ।।

चातुरमास तरुतल ठाड़े
बूँद सहे छिन - छिन में ।।

शीत मास दरिया के किनारे नित
धीरज धरें धध्यानन में ।।

ऐसे गुरु को नित्त प्रति ध्याऊँ
देत धोक चरनन में ।।

भगवान अर्जुन की बातों से प्रसन्न हो गए। भगवान ने जितनी भी बातें कही, अर्जुन ने उन्हें गहराई से पकड़ लिया। इसकी बुद्धि स्थिर हो गई है। इसकी बुद्धि में चञ्चलता नहीं है। भगवान ने जितने भी सूत्र कहे, उसका एक शब्द बना दिया, **स्थितप्रज्ञ।** यह शब्द भगवान ने नहीं बनाया। यह भगवान के उपदेश से अर्जुन ने बनाया है। भगवान ने उस शब्द को मान्यता दे दी है।

2.55

श्रीभगवानुवाच
प्रजहाति यदा कामान्, सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः(स्), स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥2.55॥

श्रीभगवान् बोले - हे पृथानन्दन ! जिस काल में (साधक) मन में आयी सम्पूर्ण कामनाओं का भली भांति त्याग कर देता है (और) अपने आपसे अपने आप में ही सन्तुष्ट रहता है, उस काल में (वह) स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

विवेचन-: भगवान उत्तर देते हैं कि हे अर्जुन जो आत्मा से आत्मा में सन्तुष्ट रहता है, अपने आप में सन्तुष्ट हो, जब बाहर के रस की आवश्यकता न रह जाए, तब उसे आत्म सन्तुष्ट कह सकते हैं। यह अध्याय सूक्तियों से भरा हुआ है यदि एक सूक्ति भी पकड़ में आ जाए तो हमारे जीवन का पूरा स्तर ही बदल जाए। किसी मनुष्य रूप में जन्मे व्यक्ति की सर्वोत्तम सन्तुष्टि कैसी होती है जो अपने आप में सन्तुष्ट है जिसको सन्तुष्ट होने के लिए बाहर का कुछ नहीं चाहिए। हम लोगों को प्रसन्नता के लिए कोई वस्तु चाहिए, कोई प्रसिद्धि चाहिए या कोई व्यक्ति चाहिए - वस्तु - व्यक्ति - प्रसिद्धि। यह मेरे यह मेरे अनुकूल है तो मैं सन्तुष्ट हो जाता हूँ, यदि यह मेरे प्रतिकूल है तो मैं असन्तुष्ट हो जाता हूँ। हम सब की यही स्थिति है।

आत्म संतुष्ट को किसी पद या स्थिति की जरूरत ही नहीं। हम सबको कामना होती है। वस्तुओं की, प्रसिद्धियों की क्योंकि जो नहीं है वह हो जाए और जो है वह जाने ना पाए। जैसे कामना वाली चीज मिल जाए, हम प्रसन्न हो जाते हैं, चली गई तो दुःखी हो जाते हैं। प्रयास करने पर भी नहीं मिली तो और दुःखी हो जाते हैं।

सबसे विचित्र बात यह है कि पूरे जीवन यह प्रयास करते हैं और पूरे जीवन में कोई भी सन्तुष्टि को टिका नहीं पाते। हमारे जीवन में कोई भी संतुष्टि जो प्रारम्भ में मिली थी वह अन्त तक वैसी ही रहेगी, ऐसा नहीं है। कारण यह है कि संसार एक परिवर्तनशील है। सारे पदार्थ हर क्षण बदल रहे हैं। पहले जो संसार था, अब नहीं है। एक क्षण नदी में जो जल देखा था, वह अब नहीं है। नदी को देख सकते हैं लेकिन पानी को नहीं देख सकते। हम किसी भी एक कागज का रूप बदल सकते हैं लेकिन उसे नष्ट नहीं कर सकते। कोई यह कार्य नहीं कर सकता, हाँ जलाकर उसका कार्बन तो बना सकता है पर उसे पूरी तरह नष्ट नहीं कर सकते। यदि हम कागज का कुछ भी ना करें तो भी इसकी चमक खत्म हो जाएगी, यह अपने आप ही फटने लग जाएगा। पचास वर्ष पुरानी पुस्तक में छेद हो जाएँगे। हमें जो पदार्थ बचपन में अच्छे लगते थे, वह अब नहीं अच्छे लग सकते। जो पदार्थ मुझे अच्छा लगता है, वह बाद में भी अच्छा लगेगा, यह जरूरी नहीं है। कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जो हमने जीवन में कभी नहीं खाए,वह पहली बार खाते हैं। रूचि और पदार्थ में हर क्षण परिवर्तन होता रहता है। एक व्यक्ति से सदा एक जैसा प्यार

नहीं कर सकते। बचपन में जितना प्यार बच्चों से होता है, उतना बड़े होने पर नहीं हो पाता। बचपन से आज तक हमारा प्यार सब के प्रति हर क्षण बदलता रहता है।

जब तक वस्तु, व्यक्ति और प्रसिद्धि में सन्तुष्टि ढूँढते हैं, वह परिवर्तनशील रहती है, वह स्थायी नहीं हो सकती। सन्तुष्टि टिकने वाली तभी आ सकती है जब अपने आप से सन्तुष्ट होते हैं। जब हमें बाहर के रस की आवश्यकता नहीं पड़े, तब सन्तुष्टि ठहर सकती है। जो व्यक्ति बाहर के रसों में सुख ढूँढता है, उसको सुख कभी नहीं मिलता। जो अपने प्रत्येक बाहरी सम्बन्धों को समाप्त कर लेता है, वो अन्दर से सन्तुष्ट हो जाता है। भूख लगी है शरीर को, शरीर ने भोजन खाया और वह सन्तुष्ट हो गया। न मुझे भूख लगी थी, न मैंने खाना खाया, इस शरीर को भूख लगी थी, इसने खाया, शरीर को सन्तुष्टि हुई, मुझे इससे कोई लेना-देना नहीं है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति शरीर को अपना नहीं मानता। वह शरीर से विच्छेद कर लेता है। इस सम्बन्ध विच्छेद के कारण ही सुख मोह से भी छूटता है। सारी प्रकृति परिवर्तनशील है और इस शरीर के अन्दर जो आत्मतत्त्व बैठा है, वह सत् है। सत् जो परिवर्तनशील नहीं है असत् जो हर क्षण परिवर्तनशील है। हमारा शरीर हर क्षण परिवर्तित होता रहता है लेकिन जो आत्म तत्त्व है वह कभी परिवर्तनशील नहीं होता। इस कारण बचपन से लेकर आज तक हम जिस सुख के लिए हम भाग रहे हैं, वह बुढ़ापे तक भी कभी पूरा होने वाला नहीं है। परिवर्तनीय वस्तुओं से अपरिवर्तनीय को सुख देना चाहते हैं वह कभी नहीं हो सकता। दूध और पानी मिल सकते हैं लेकिन सोना और दूध नहीं मिल सकते। विजातीय चीजें नहीं मिलती है और सजातीय मिल जाती है। जिस क्षण हमें आत्मतत्त्व का आनन्द लेना आ गया, वह सजातीय हो गया। सजातीय होने से वह सदा के लिए सन्तुष्ट हो जाता है और विजातीय होने से वह कभी भी सन्तुष्ट नहीं हो पाता ।

जो किसी बाहरी घटना से विचलित नहीं होते उसे न सुख होता है ना ही दुःख होता है जो अपने आनन्द से परिपूर्ण है, उसका सुख किसी बाहरी घटना से न बदलता है,न ही परिवर्तित होता है। जो इस स्थिति में पहुँच गया, उसका कभी पतन नहीं होता। वह स्थितप्रज्ञ हो जाता है।

आज का सत्र का समापन प्रार्थना और हरि शरणं संकीर्तन के साथ सम्पन्न हुआ। इसके बाद प्रश्नोत्तर सत्र प्रारम्भ हुआ।

प्रश्नकर्ता : श्री गौरव भैया

प्रश्न : स्वामी जी ने राम कथा में एक सहस्रार्जुन जी का जिक्र आया था। ये सहस्रार्जुन वही हैं जो आगे चलकर विश्वामित्र बने जिन्होंने कामधेनु चुराई थी।

उत्तर : सहस्रार्जुन एक अलग पात्र हैं। वे विश्वामित्र नहीं हैं। विश्वामित्र जी तो राजा कौशिक थे।

प्रश्नकर्ता : अरुणा दीदी

प्रश्न : उनचासवें श्लोक में बुद्धियोगात्, धनञ्जय, बुद्धौ, शरणम्, अन्विच्छ, कृपणाः, फलहेतवः इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर : भगवान कह रहे हैं कि जो सकाम कर्म हैं, वे निश्चित नहीं हैं। मैं अपनी बुद्धि में समता लाकर काम करता हूँ, यह एक बात है। मुझे ये करने से ये मिलेगा, ये दूसरी बात है। कर्त्तव्य कर्म की भावना से किया गया कार्य बुद्धियोग है। सकाम कर्मों का फल अच्छा और बुरा दोनों हो सकता है अर्थात इसमें कभी सुख भी मिलेगा, कभी दुख भी मिल सकता है।

प्रश्नकर्ता -: अशोक भैया

प्रश्न -: भगवान की कृपा के बिना कोई पत्ता भी नहीं हिलता?

उत्तर -:भगवान की कृपा के बिना या भगवान की इच्छा के बिना कोई पत्ता भी नहीं हिलता, इसका अर्थ यह है कि भगवान की शक्ति के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। जैसे सूर्य की धूप के बिना कोई फसल पक सकती है क्या? नहीं पक सकती। अर्थात फसल के पकने के लिए सूर्य की धूप आवश्यक बात है। यदि हम ये कहें कि सूर्य उस फसल को पकाने का कार्य करता है तो ये ठीक होगा क्या? नहीं। हम सारा कर्म भगवान की शक्ति से ही करते हैं। भगवान ने हमें कर्म करने का अधिकार दिया है। हम अच्छा कर रहे हैं या बुरा कर रहे हैं, वह हो तो रहा है, वह हम पर निर्भर करता है।

प्रश्नकर्ता : शैला दीदी

प्रश्न -:हम मोक्ष प्राप्ति के लिए बहुत प्रयास करते हैं और यह कहा जाता है कि आत्मा कभी मरती नहीं है। इसलिए जब मोक्ष प्राप्त हो जाएगा तो आत्मा का क्या होगा?

उत्तर -: होगा कुछ भी नहीं। हम कर्मफल के बन्धन से छूट जाएँगे और यह आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाएगी। यह **पुनरपि जनमं, पुनरपि मरणं** के बन्धन से मुक्त हो जाएगी। आत्मा पहले भी मुक्त थी, अब भी मुक्त ही रहेगी।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||